

महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में नारी

दुर्गादत्त शर्मा

प्राध्यापक,

भूगोल विभाग,

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर राजकीय

स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

श्रीगंगानगर, (राजस्थान)

बलवन्त सिंह चौहान

प्राध्यापक,

संस्कृत विभाग,

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर राजकीय

स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

श्रीगंगानगर, (राजस्थान)

सारांश

नारी ब्रह्मविद्या है, श्रद्धा है, सद्गुणों की खान है और वह सब कुछ है जो इस प्रकट विश्व में सर्वश्रेष्ठ के रूप में दृष्टिगोचर होता है। नारी वह सनातन शक्ति है जो अनादिकाल से उन सामाजिक दायित्वों का वहन करती रही है, जिन्हें पुरुषों का कन्धा सँभाल नहीं पाता है। वस्तुतः मानव-समाज का रथ पुरुष और स्त्री इन दो पहियों पर चलता है। दोनों पहियों में से एक में भी विकृति आ जाने पर रथ की गति अवरुद्ध हो जायेगी।

मुख्य शब्द : ब्रह्मविद्या, सभ्यता और संस्कृति, धैर्यशालिनी प्रस्तावना

समाज रूपी सिक्के के नारी और पुरुष दो पहलू हैं। इसलिए हमारे प्राचीन समाज में पुरुष और नारी दोनों को समान महत्त्व दिया गया। वैदिक सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में नारी ने अपने विविध रूपों द्वारा जो अद्वितीय योगदान दिया, उससे वह विकास के चमोत्कर्ष पर पहुँची है। देवी रूप में जहाँ नारी ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है, वहीं लौकिक रूप में जीवन के विविध दायित्वों को निभाने वाली सूत्रधार है, जिसके सामर्थ्य से सृष्टिचक्र संचालित है। 'गृहिणी गृहमुच्यते' द्वारा वैदिक युग में नारियों को गृहस्थी में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। स्मृतिग्रंथों में नारी विधाता की अनुपम सृष्टि कही गई है। वह कोमल, सरस, रागमयी, धैर्यशालिनी और ममतामयी कही गई है। शास्त्र नारी को उस भगवती जगद्धात्री, विश्वम्भरा, जगदम्बिका का अंश मानते हैं, जो शक्ति स्वरूपा है, नित्य नारायण हृदय निवासिनी महालक्ष्मी है, वेदमाता सरस्वती है। महाकामेश्वर प्रिया राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी है, अखण्ड ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति तथा लयकारिणी है, जिसके बिना न ब्रह्मा हैं, न विष्णु हैं और न ही शिव हैं। इसलिए महर्षि मनु ने कहा है –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

कहने का आशय यह है कि जिस घर में स्त्रियों को पूरा आदर सम्मान दिया जाता है और उनकी आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रखा जाता है, वहाँ सभी तरह की सुख-शांति रहती है, लेकिन इसके विपरीत जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहाँ सभी प्रकार के शुभ और पवित्र कर्म भी कोई सुखद फल नहीं देते हैं। ब्रह्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति की कामना से अपने ही शरीर के दो भाग कर आधे से पुरुष और आधे से स्त्री बनाकर सृष्टि की है –

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।

अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः।।

आदिकाल से अद्यतन समाज में नारी का न्यूनाधिक अस्तित्व एवं भूमिका रही है। संस्कृत वाङ्मय के मूर्धन्य काव्यकारों, कथाकारों एवं नाटककारों ने भी नारी के विविध रूपों का चित्रण कर अपनी कुशाग्र बुद्धि से सम्पन्न प्रतिभा को प्रस्तुत किया है। उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य ने नवरत्नों में से एक सरस्वती के वरद पुत्र कविता-कामिनी के कमनीय कान्त, कविकुल तिलक और कविता-कानन कंसरी कालिदास थे।

कालिदास के युग में अनेक आश्रम किंवा गुरुकुल थे, जिनमें शिक्षा की व्यवस्था थी। इन गुरुकुलों को राजा की ओर से पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। इन आश्रमों में वेद-वेदांगादि के साथ-साथ जीवनोपयोगी प्रायः समस्त शिक्षाएँ दी जाती थी, जिनमें साहित्य-कला, चित्रकला एवं संगीत आदि प्रमुख थे। इनके साथ-साथ प्राथमिक चिकित्सा, वृक्ष-पोषण, औषधोपचार, अतिथि-सत्कार आदि की शिक्षा की व्यवस्था थी। संस्कृत नाट्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथम अंक में आश्रम की व्यवस्था

थी। संस्कृत नाट्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथम अंक में आश्रम बालिकाओं को वृक्ष-सेचन करते हुए दर्शाया गया है। शकुन्तला ने अपने प्रेमपत्र में जिस मार्मिकता से अपने प्रणय का परिचय दिया है, वह उसकी साहित्य मर्मज्ञता का परिचायक है। वह अपने हाथों से ही दुष्यन्त के लिए मदन-लेख लिखती है, जिसमें विरह-जनित उत्कण्ठा, अभिलाषा एवं उपालम्भ की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है -

तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवाऽपिरात्रावपि।
निर्घृण! तपति बलीयस्त्वपि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि।।

अर्थात् हे निर्दय! मैं तुम्हारे हृदय को तो नहीं जानती, परन्तु कामदेव तो तुम पर आश्रित अभिलाषा वाले मेरे अंगो को दिन-रात अतीव सन्तप्त कर रहा है। इस प्रकार शकुन्तला द्वारा लिखे गये प्रणय-पत्र में अपने भावों को प्रकाशित करने की अद्भुत सामर्थ्य तथा पटुता उदात्त मात्रा में प्रकट होती है। इसी प्रकार राजा दुष्यन्त द्वारा निशानी के रूप में दी गई नामांकित मुद्रिका को पढ़कर वे तुरन्त उसे पहचान लेती हैं। वस्तुतः कण्व ऋषि के आश्रम में रहकर शकुन्तला ने स्त्रियोचित शिक्षा प्राप्त की थी। उसकी दक्षता के विश्वास पर ही कुलपति कण्व आश्रम की व्यवस्था का भार अपनी पालिता पुत्री को सौंपकर सोमतीर्थ चले गये थे।

महाकवि कालिदास ने शकुन्तलों को एक आदर्श भारतीय ललना के रूप में प्रस्तुत कर नारी महिमा को अभिव्यक्त किया है। कालिदास की शकुन्तला प्रकृति के क्रोड में खेती व पली हुई प्रकृति का अभिन्न अंग ही प्रतीत होती है। उसका लालन-पालन प्रकृति के सुरम्य व सुविस्तृत प्रांगण में हुआ है, जिससे उसके हृदय में उदारता, सहृदयता तथा सदाशयता प्रभृति सात्त्विक गुणों का सहज विकास हुआ है। आश्रम के वनस्पतियों के प्रति उसका सादर स्नेह है- 'अस्ति मे सादरस्नेह एतेषु।' वृक्षों को सींचती हुई शकुन्तला को केसर वृक्ष अपनी ओर बुलाता हुआ सा प्रतीत होता है। 'वातेरितपल्लवाङ्गलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षः। 'वनज्योत्सना' नामक लता को वह अपने प्राणों से भी अधिक स्नेह करती है तथा पतिगृहगमन करते समय उसे आलिंगन कर विदा लेती हुई कहती है - 'वनज्योत्सने, आग्रसंगतापि मां प्रत्यालिंगेतोगताभिः शाखाबाहुभिः। अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि।' आश्रम के तरुओं के प्रति उसके प्रेम की पराकाष्ठा कण्व ऋषि के कथन से स्पष्ट हो जाती है कि पहले वह तरुओं के जल से अभिषिक्त करने के उपरान्त ही जल ग्रहण करती है। आभूषण प्रिय होने पर भी वह उनके पल्लवों को नहीं तोड़ती है तथा उनके पुष्पित होने पर वह उत्सव मनाती है।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसुतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
स्यं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।

इससे यह ध्वनित होता है कि तपोवन के वनस्पति शकुन्तला के सगे सम्बन्धी हैं। शकुन्तला की विदाई पर मृगियाँ घास चरना तक त्याग देती हैं। मयूर नृत्य का परित्याग कर देते हैं। यहाँ तक की लताएँ भी पीले पत्तों के माध्यम से आँसुओं को टपकाती रहती हैं।

वहीं कालिदास ने नारी के अलौकिक सौन्दर्य को प्रमाणित करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के प्रथम अंक में शकुन्तला अपनी सखियों के साथ वृक्ष-सेचन करती हुई दिखाई गई हैं, जिसका वर्णन राजा दुष्यन्त के मुख से कविवर कालिदास ने इस प्रकार करवाया है-

स्त्रीरत्न सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे।

धातुर्विभुत्व मनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।

प्रथम अंक में ही राजा दुष्यन्त शकुन्तला के अनुपम सौन्दर्य को देखकर कहते हैं कि भले ही इनके पहने हुए वल्कल वस्त्र इनके शरीर के योग्य नहीं हैं, फिर भी ये इनके सौन्दर्य में उसी प्रकार वृद्धि कर रहे हैं जिस प्रकार सिवार से घिरा हुआ कमल भी सुन्दर होता है तथा चन्द्रमा का काला धब्बा भी उसकी शोभा में वृद्धि ही करता है। इस प्रकार नारी के अप्रतिम सौन्दर्य पर प्रत्येक वस्तु शोभनीय होती है -

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।

नारी के सहज सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने के लिए किसी कृत्रिम प्रसाधन की आवश्यकता नहीं होती है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला के कौमार्य, सौन्दर्य व लावण्य को देखकर कहते हैं-

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैः,

अनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।।

वस्तुतः महाकवि कालिदास रमणीयता की उपासना करने वाले साधक कवि हैं। उनकी दृष्टि में वही स्वरूप रमणीय होता है जो निष्कलंक हो, परम पवित्र एवं सदगुणों से समन्वित हो। वे इसी प्रकार के सौन्दर्य के समाराधक रहे हैं। कालिदास जैसे कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि जगत्त्रय-स्रष्टा ब्रह्मा ने अपनी सौन्दर्य कल्पना को साकार रूप देने के लिए ही समस्त सौन्दर्य सामग्री को लेकर अपनी चित्र की तुलिका से नारी रूप सजीव चित्र का निर्माण किया है। नारी के सौन्दर्य में एक ऐसी नैसर्गिक प्रखरता एवं दीप्ति है कि उसे किसी भी सौन्दर्योपकरण की आवश्यकता नहीं होती है। कालिदास ने नारी के शारीरिक सौन्दर्य को उसकी लज्जाशीलता, शालीनता और सरलता आदि आध्यात्मिक गुणों से महनीय बना दिया है।

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में भारतीय परम्परा और आदर्श में आस्था रखते हुए अनसूया एवं प्रियवंदा 'अतिथि देवो भव' की परम्परा का अनुपालन भी करती हुई दृष्टिगोचर होती है। जब शकुन्तला राजा का सत्कार किये बिना आश्रम से जाने लगती है तो अनसूया द्वारा शकुन्तला को निर्देश दिया जाता है कि विशिष्ट अतिथि का बिना सत्कार किये हुए उन्हें छोड़कर स्वच्छन्दतापूर्वक चले जाना अनुचित है। 'सखि, न युक्तम् अकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम्।' उक्त कथन कहकर कविवर ने नारी को अतिथि-सत्कार करने वाली उद्घोषित किया है। राजा दुष्यन्त जब-जब शकुन्तला के सम्मुख आते हैं, तब-तब उसने राजा को उचित आदर एवं आतिथ्योचित अर्घ्य आदि प्रदान कर सन्तुष्ट किया। आश्रम कन्याओं के आतिथ्य से प्रभावित होकर राजा कहते हैं- 'भवतीनां

सूनुतयैव कृतमातिथ्यम्।' इसी प्रकार प्रियंवदा अपने आतिथ्य सत्कार के प्रभाव से ही दुर्वासा मुनि को शान्त कर पाती है।

तृतीय अंक में पुरुवंशी राजा दुष्यन्त जब शकुन्तला को प्रेमालाप करने के लिए आगे बढ़ते हैं तो भारतीय सभ्यता और संस्कृति की साकार मूर्ति लज्जाशील शकुन्तला उनसे कहती है कि मैं इस विषय में सखियों से अनुमति लूंगी। वस्तुतः लज्जा स्त्रियों का आभूषण होता है। वह राजा से कहती है – मुञ्च तावन्माम्। भूयोपि सखीजनमनुमानयिष्ये।। वह अपने पिताश्री एवं आश्रम के कुलपति धर्म-तत्त्वज्ञाता कण्व ऋषि की बिना आज्ञा अर्द्धांगिनी नहीं बनना चाहती है। वह ऐसे अवसर पर दुष्यन्त से कहती है कि मैं गुरुजनों के अधीन हूँ। उनकी अनुमति के बिना मैं आत्मसमर्पण नहीं कर सकती हूँ। वह अपने प्रेम से मर्यादित रहती है तथा उसे स्वाभाविक लज्जा के कारण नियन्त्रित कर लेती है। 'पौरव! रक्ष विनयम्। मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि। (तृतीय अंक) अन्ततः वह अपनी सखियों से अनुमति लेकर अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को भलीभांति समझकर गान्धर्व विवाह के सूत्र में आबद्ध हो जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदासकालीन समय में कन्याओं को अपनी इच्छानुसार पति चुनने एवं गान्धर्व विवाह करने की स्वतन्त्रता थी तथा प्राचीनकाल में भी इस प्रकार के विवाह को धार्मिक एवं सामाजिक मान्यता थी।

शकुन्तला के व्यक्तित्व में विनयशीलता के साथ स्वाभिमान का भी मणिकाञ्चन योग है। जब उसके सम्मान, आचरण एवं वंश आदि की गरिमा पर कोई चोट पहुँचाता है तो उसका स्वाभिमान जाग उठता है। पञ्चम अंक में कण्व ऋषि से आज्ञा लेकर दोनों शिष्य तथा वृद्धा गौतमी राजा दुष्यन्त के दरबार में गर्भवती शकुन्तला को लेकर जाते हैं। राजा शाप के कारण सम्पूर्ण वृत्तान्त भूल जाते हैं। सौन्दर्य की अपार छटा देखकर वे शकुन्तला की ओर आकर्षित होते हैं, परन्तु उसे शापवश पराई स्त्री समझकर धर्मनिष्ठा के कारण अस्वीकार कर देते हैं और शकुन्तला के साथ अपने विवाह के विषय में 'किमिदमुपन्यस्तम्' कहकर अनभिज्ञता सूचित करते हैं तो शकुन्तला के हृदय को अपमान का धक्का लगता है और वह राजा को कठोरतापूर्वक कहती है – 'पौरव! न युक्तं प्रत्याख्यातुम्'। जब राजा अन्य प्रमाणों से भी सन्तुष्ट न होकर समस्त स्त्री-जाति को ही अपने दोषारोपण का निशाना बनाते हैं तो उसका स्वाभिमान वाचाल हो उठता है और वह क्रोधित होकर राजा को 'अनार्य' शब्द से सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कटुवचन कहती हैं – 'पौरव! न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।।' (पञ्चम अंक)

अर्थात् हे पौरव! आपके लिए इस प्रकार का कथन उचित नहीं है क्योंकि आपने गाम्भीर्यरहित, अति सरल एवं निष्कपट हृदय वाली मुझ शकुन्तला को शपथपूर्वक टगकर प्रेम-विवाह किया था। शकुन्तला इतना कहकर ही शान्त नहीं होती है वे राजा को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि आप अपने हृदय के अनुमान से ही सबको देखते हो। आप जैसे वञ्चक हृदय वाले हो, वैसे ही दूसरों को और शुद्ध हृदय वाली मुझको भी समझ रहे हो। आपके अतिरिक्त और कौन अब धर्म का कञ्चुक (पाखण्डी) धारण करने वाला तथा घास-फूस से ढके हुए कूप के समान तुम्हारा अनुकरण करेगा? सरोषम् अनार्य!

आत्मनोहृदयानुमानेनपश्यसि।कइदानीमन्योधर्मकञ्चुकप्रवेशिन स्तृणच्छन्नकूपोपमस्यतवानुकृति प्रतिपत्स्यते?'

कालिदास ने अपने नाटक में भारतीय गृहिणी के आदर्श एवं माहात्म्य को स्थापित किया है। कालिदास नारी की तेजस्विता के प्रशंसक रहे हैं। गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों को विद्याध्ययन के अतिरिक्त गृहकार्य सम्बन्धी विविध कलाओं और विद्याओं के साथ चित्रकला, संगीत एवं काव्यकला की शिक्षा भी दी जाती थी। शकुन्तला अपने प्रिय मृगशावक के दर्भाकुरों से बिंधे हुए मुख में इंगुदी के तेल का लेप कर उसका सद्योपचार करके यह सूचित करती है कि उस समय कन्याओं को प्राथमिक चिकित्सा की शिक्षा भी दी जाती थी। अंक में शकुन्तला के ज्वरग्रस्त हो जाने पर प्रियंवदा और अनसूया उसके शरीर पर शीतलता प्रदान करने वाले चन्दन का लेप करती हैं। कमलनाल के बने हुए वलय (कंकण) को हाथ में पहनाती हैं तथा कमल-पत्रों से उसके शरीर पर वायु प्रवाहित करती हैं तथा उशीर (खस) का लेप भी करती हैं, जिससे उनकी प्राथमिक चिकित्सा सम्बन्धी रुचि, अभ्यास तथा रुग्ण-सेवा का पता चलता है। वहीं गौतमी भी यज्ञ का शान्त्युदक लेकर शकुन्तला के स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रस्तुत होती है इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रीवर्ग को उपचार सम्बन्धी शिक्षा किसी न किसी रूप में तत्कालीन समाज में अवश्य दी जाती थी।

भारतीय समाज में 'बेटी पराया धन होती है' यह कथन सर्वविदित है। गुप्तकालीन समाज में भी कन्या को पराया धन ही स्वीकार किया गया है। माता-पिता कन्या के जन्म, लालन-पालन आदि का निर्वाह बड़े स्नेह से करते हैं। जब कन्या विवाह योग्य हो जाती है तो उसे उचित वर्ग को दे दिया जाता है। कवि कालिदास ने भी कण्व ऋषि के मुख से शकुन्तला को परकीय धन कहलवाया है।

अर्थो हि कन्या परकीय एव, तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।

जातो ममायं विशदः प्रकामं, प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।

चतुर्थ अंक में ही महर्षि कण्व द्वारा पुत्री की विदाई के अवसर पर पुत्री को दिया गया सन्देश वर्तमान युग में भी सार्थक है। पतिगृहगमन काल पर शकुन्तला को अनुशासित करते हुए महर्षि कण्व कहते हैं कि तुम अपने पति के घर जाकर सास-ससुर तथा गुरुजन आदि की सेवा करना, अपनी सौतों के साथ प्रियसखी जैसा व्यवहार करना, कभी किसी कारणवश अपमानित होने पर भी क्रोध में आकर पति के विपरीत आचरण मत करना, अपने आश्रितजनों पर उदारता दिखाना और अपने सौभाग्य पर कभी भी अभिमान मत करना तथा भाग्य से जो प्राप्त हो गया उसे विनम्रता से स्वीकार करना आदि-आदि।

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,

भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,

यान्त्येव गृहिणीपदं युवतयोः वामाः कुलस्याधयः।।

वस्तुतः महर्षि कण्व का यह उपदेश गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाली प्रत्येक युवती के लिए आज भी समसामयिक तथा पालनीय है। इस उपदेश का पालन करने वाली नववधू निश्चय ही पतिकुल में गृहलक्ष्मी कहलाती है तथा पिता के कुल का गौरव बढ़ाती है। इन नियमों के

विपरीत आचरण करने वाली युवती पति और पिता दोनों कुल के लिए मानसिक व्यथा का कारण बन जाती है।

प्राचीनकाल में आश्रम व्यवस्था प्रचलित थी। राजा लोग भी वृद्धावस्था में राजकार्य को छोड़कर वानप्रस्थ होकर पत्नी के साथ तपोवन में रहकर तपस्वियों का जीवन व्यतीत किया करते थे। शकुन्तला अपनी विदाई के समय अपने पिता कण्व ऋषि से पूछती है कि मैं इस आश्रम में वापिस कब आऊँ? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कण्व उन्हें उपदेश देते हैं कि चिरकाल तक चारों समुद्र तक व्याप्त पृथ्वी की सौत रहकर अपने अद्वितीय महारथी पुत्र दौष्यन्ति (भरत) को राजसिंहासन पर बैठाकर तथा अपने पुत्र को अपने कुटुम्ब का भार सौंप देने वाली पति के साथ इस शान्त आश्रम में पुनः आकर निवास करना।

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी, दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।

भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरणे सार्धं, शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥

कालिदासकालीन समाज में भी नारियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करने में अपना गौरव समझती थीं। पञ्चम अंक में राजा दुष्यन्त द्वारा तिरस्कृत होने पर भी शकुन्तला अपने पतिदेव का अहित नहीं सोचती है। पतिनिष्ठा परित्यक्ता शकुन्तला एक तपस्विनी विरहिणी के रूप में मारीच ऋषि के आश्रम में सात्त्विक वृत्तियों से अपना जीवन-यापन करती है तथा एक पवित्र भारतीय नारी के आदर्श को प्रस्तुत करती है। सप्तम अंक में शकुन्तला राजा दुष्यन्त से पुनः मिलन होने पर आनन्दविभोर हो उठती हैं। अपने पति के साथ ऋषि मारीच के पास जाने के लिए स्त्री की लज्जाशीलता के चलते संकुचाती है 'जिहनेमि आर्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्।' राजा दुष्यन्त स्वयं शापवश हुए वृत्तान्त को स्वीकार करते हुए अपने कृत्य पर शोक प्रकट करते हुए कहते हैं कि अत्यन्त पवित्र आचरण वाली शकुन्तला को गर्भिणी अवस्था में मैंने अकारण परित्याग करके अतिकठोर आचरण किया था, वही शकुन्तला मेरे लिए दीर्घकालीन विरह-व्रत का पालन कर रही है।

वसने परिधूसरे वसाना, नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।

अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला, मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥

मारीच आश्रम में पति द्वारा क्षमायाचना किये जाने पर एक आदर्श भारतीय ललना के समान शकुन्तला अपने पति पर आक्रोश न करके शान्त हो जाती है और सम्पूर्ण दोषारोपण अपने भाग्य पर ही करती है। 'नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामभिमुखमासीद्, येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरहः संवृत्तः ॥ (सप्तम अंक) इस प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में सर्वत्र शकुन्तला को एक सुशील, सुसभ्य, सच्चरित्र, पतिव्रता, लज्जाशील, गुणशीलसम्पन्ना असाधारण सौन्दर्य सन्दोहसंवलित एवं एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया गया है, जो सुख-दुखादि सभी परिस्थितियों में भी अपने प्रियतम की ही मंगलकामना की इच्छा रखने वाली समर्पित भार्या है। वहीं स्त्री पात्रों में गाम्भीर्य एवं सहिष्णुता की मूर्ति गौतमी को वात्सल्य एवं शान्तप्रकृति युक्ता चित्रित किया है जो वात्सल्यमयी माता के रूप में शकुन्तला से प्रस्तुत नाटक में पुत्रीवत् स्नेह करती है। इसी प्रकार शकुन्तला की सखी

अनसूया स्वभाव से गम्भीर, विचारशील, व्यवहारकुशल, प्रौढ़ तथा दूरदर्शिनी भूमिका में है।

निष्कर्ष रूप में महाकवि कालिदास ने नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से नारी में स्वाभाविक रूप से विद्यमान आदर्श रूप में रहने वाले अयत्नज, भावज एवं अंगज अलंकारों का सन्निवेश शकुन्तला के चित्रित में किया है। उसका अन्तर्बाह्य सौन्दर्य प्रेम, औदार्य, करुणा एवं लज्जा से समान रूप से सरोबार है, जिससे सहृदयों का चित्त सदैव अनुरजित रहता है। महाकवि ने उक्त कृति के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जीवन का जीता-जागता चित्र अंकित कर दिया है।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति 3/56
2. 1/34
3. 3/13
4. 4/9
5. 1/17
6. 2/10
7. 4/22
8. 4/18
9. 4/20
10. 7/21